साहित्य संहिता
Available at http://www.sahityasamhita.org/
ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

# ‘आधे–अधूरे’ नाटक का रंग–शिल्प

**प्रदीप कुमार**
एम.ए., एम.फिल एवं नेट (हिन्दी)
गांवः ईसरहेड़ी, जिलाः झज्जर (हरि0)

**शोध–आलेख सारः** ‘आधे–अधूरे’ नाटक तनाव और संघर्ष के तीखेपन से भरा है। नाटक के तीखेपन की परिणति, झल्लाहट, असंतोष तथा चरित्र पुकार में देखा जा सकता है। इसमें जीवन के विघटन और उब की सघन अनुभूति और प्रायः दोहरे संघर्ष प्रस्तुत करते हैं। इस नाटक में सिर्फ एक सामाजिक संबंध को जिया जा रहा है। स्त्री–पुरुष में आपसी संबंधों का आकर्षण नहीं है बल्कि संबंध का मनचाहा सामाजिक निर्वाह भर है। पात्र स्वयं में अधूरे रहते हुए भी एक–दूसरे के अधूरेपन पर नजर रखते हैं और पूरेपन की तलाश में प्रायः प्रत्येक पात्र घर से बाहर निकलता है, किन्तु बार–बार टकराकर निराशा लिए हुए वहीं वापस लौट आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पात्रों का पूर्णता की तलाश में बाहर निकलना और विफल होकर वापस आ जाना उनकी नियति बन गई है। पति महेन्द्र और पत्नी सावित्री स्वयं तो अपूर्ण ही है, किंतु दोनों मिलकर भी पूर्ण नहीं हो पाते प्रयास करके भी इस अधूरेपन की दलदल से नहीं निकल पाते।

**मूलशब्दः** सामाजिक सम्बन्ध, अपूर्णता, आधुनिक चेतना, स्त्री–पुरूष सम्बन्ध।

**भूमिकाः** मोहन राकेश आधुनिक चेतना के साहित्यकार हैं। इनकी रचनाओं में भोगे हुए यथार्थ का चित्रण मिलता है। उनकी नाट्य कृति ‘आधे–अधूरे’ आधुनिक संवेदना की समसामयिक परिवेश में प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। इस नाटक का प्रकाशन सन् 1969 में हुआ। कथानक, चरित्र, संवाद एवं वातावरण

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

के स्तर पर यह नाटक उनके दो पूर्व नाटकों 'लहरों के राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' से बिल्कुल अलग है। इसमें कठोर यथार्थ की सीधी अभिव्यक्ति है और अनुकूल आम–आदमी की भाषा में रचनात्मक सौन्दर्य दृष्टि और आकर्षण शक्ति से भिन्न है। सिद्धनाथ कुमार ने इस नाटक के संदर्भ में लिखा है–

''राकेश के तीसरे नाटक में आधुनिक संवेदना जिस प्रखरता के साथ आयी, वह पहले के नाटकों में नहीं मिली थी।''

यह नाट्य कृति पारिवारिक विघटन की गाथा है। इसमें आधुनिक परिवेश के कारण जीवन में आ रही विडम्बनाओं को नाटकीय ढंग से विश्लेषण करके प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि नाटक के संदर्भ में कहा जाता है– 'नाटक रंगमंचीय विधा' है। नाटक को हम देखते भी हैं, सुनते भी हैं और पढ़ते भी हैं। इसीलिए भरतमुनि ने नाटक को 'पंचमवेद' की संज्ञा दी है। नाटक की सही पहचान हमें उसके मंचन पर ही मालूम होता है। किसी भी नाटक को जब प्रस्तुत किया जाता है, तो उसमें केवल पात्र की ही योजना नहीं रहती है, बल्कि उसके साथ–साथ मंच सज्जा, भाषा, ध्वनि, प्रकाश, पहनावा, रूप–सज्जा आदि की भी परिणति निहित होती है। इस नाटक के संदर्भ में डॉ. गोविन्द चातक लिखते हैं कि यह–

''नाट्य कृति अपने में अपूर्ण है, यह समग्र नाट्य कला का एक आधार–भूत अंकमात्र है। इसी प्रकार सारा रंगकर्म नाट्यकृति के बिना अर्थहीन है।''

मोहन राकेश गहरे रंगानुभव से जुड़े हुए थे। इसीलिए उन्होंने नाटकों में रंगभाषा का सार्थक प्रयोग किया है। साहित्य की भाषा और रंगमंच में जो फर्क होता है उसे उन्होंने समझा था। रंग बिम्बों और प्रतीकों को समझना एक

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

कठिन कार्य है लेकिन मोहन राकेश इस कला में कुशल थे। 'आधे–अधूरे' हिन्दी के कुछ गिने–चुने नाटकों की परंपरा की एक अगली कड़ी है। शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग बोलचाल की दृष्टि से आम–आदमी की ही है।

किसी भी नाटक का सबसे महत्वपूर्ण तत्व उसका रंग–शिल्प होता है। उसी के आधार पर किसी भी नाटक की सृजनात्मकता और रचनात्मकता का विश्लेषण किया जाता है। 'आधे–अधूरे' नाटक अपने रंग–शिल्प के आधार पर विशिष्ट है। इस नाटक के रंगशिल्प के बारे में सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है–

''आधे–अधूरे' अपनी आधुनिक संवेदना के कारण जितना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, उतना ही अपने शिल्प के कारण।''

मोहन राकेश ने अपने सभी नाटकों में कथ्य और पात्र को जीवन्त तथा विश्वसनीय बनाने के लिए पुरानी परंपरा की भाषा को त्यागकर एक नयी नाट्‌य भाषा का प्रयोग नाटकों में किया है। इसका कारण उनकी रंगमंच को लेकर चेतना और मध्यवर्ग को देखने की दूर दृष्टि काफी महत्वपूर्ण है। साहित्य में भाषा के पक्ष को लेकर वे कितने जागरूक थे, यह 'बकलम खुद' में अभिव्यक्त उनके इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है–

''अनुभूति के लिए भाषा से उलझने की समस्या हर लेखक के सामने आती है– अर्थात्‌ हर सचेत और अनुभूति प्रवण लेखक के सामने। समस्या नहीं आती तो उन लोगों के सामने, जो अनुभूति और चिंतन की दृष्टि से अन्दर से बिल्कुल साफ हैं या केवल कुछ एक बेसिक अनुभूतियों और विचारों के दायरे में सोचते रहते हैं। ....उन्हें अपने मन की हर बात के लिए उपयुक्त भाषा जरूर मिल जाती है क्योंकि उनके मन की हर बात पहले से ही किसी न किसी की

साहित्य संहिता
Available at http://www.sahityasamhita.org/
ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

कही ओर सोची हुई बात होती है। हजारों बार कही और सोची हुई बात की कार्बन कॉपी तैयार करने में समस्या पैदा ही कहाँ होती हैं।''

मोहन राकेश की रंग–दृष्टि का एक बहुत ही महत्वपूर्ण आयाम है विभिन्न चरित्रों के अंतर को शब्दों, ध्वनियों और खास तरह की वाक्य संरचना के माध्यम से व्यक्त करना। वे अपने नाटकों के चरित्रों को एक खास तरह की शब्द योजना, ध्वनि–संयोजन और वाक्य रचना के माध्यम से, रेखांकित करने में सफल हुए हैं। 'आधे–अधूरे' में महेन्द्रनाथ के संवाद भी अधूरे शब्दों, वाक्यों और विराम चिन्हों से भरे पड़े हैं जो उसके अपूर्ण व्यक्तित्व एवं अनिश्चित मानसिकता को उद्घाटित करते हैं–

''तो अच्छा यही है कि मैं कुछ न कहकर चुप रहा करूँ। अगर चुप रहता हूँ, तो... ।''

'आधे–अधूरे' में संस्कृत के तत्सम और अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है इसके अतिरिक्त इसमें उर्दू, फारसी और पंजाबी शब्द भी दिखाई देते हैं। उनका मानना था कि उर्दू, फारसी के शब्दों के अलावा लोकभाषा और कुछ मुहावरों का प्रयोग भी मेरे नाटकों में हुआ है। इन सब प्रयोगों ने नाटक के शिल्प को बढ़ाया है। नाटकों में मुहावरों और लोकभाषा के संदर्भ में गोविन्द चातक लिखते हैं–

''आधे अधूरे की भाषा अपने कथा के अनुरूप बोलचाल के मुहावरों के साथ जुड़ी है।''

इस नाटक में मोहन राकेश ने अपनी बात को असरदार ढंग से प्रस्तुत करने के लिए परंपरागत भाषा के बजाए अलग भाषा का प्रयोग किया है। इसमें टूटे–फूटे वाक्यों के अलावा जैसे–ओह ओह ओह, हुँ–हुँ हुँ–हुँ हुँ,

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

ओफ्फोह... ओफ्फोह थू–थू इत्यादि। इस तरह के प्रयोग नाटक में संभवतः इससे पहले प्रयोग नहीं किये जाते थे। लेकिन मोहन जी ने इन निरर्थक–से लग रहे शब्दों के माध्यम से पात्र के पूरे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं।'' 'आधे–अधूरे' अपने कथ्य और शिल्प में बेजोड़ नाटक है। यह नाटक अपने पूर्ववर्ती नाटकों से अलग हटकर जनमानस के बीच एक नवीन छवि निर्मित करने का कार्य किया है।''

इस नाट्य कृति में मोहन राकेश ने दृश्यबंध, मंच सज्जा, प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था और वस्त्र–विन्यास सभी तरह के शिल्पों को अत्यंत कुशलता पूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयास ही नहीं किया है बल्कि कहना उचित जान पड़ता है कि प्रयास शत–प्रतिशत सफल भी रहा है।

इन्होंने परम्परा से चली आ रही नाटकों में दृश्यों की जरूरत को नजर अंदाज करते हुए एक नया ही प्रयोग किया। इस पूरे नाटक को उन्होंने सिर्फ दो भागों में ही बांटा है–(पूर्वाद्ध और उत्तरार्द्ध)। यह कहना असत्य नहीं होगा कि राकेश जी को दृश्य को प्रभावशाली बनाने में महारथ हासिल थी। एक दृश्य उदाहरणार्थ–

''कमरा खाली है। तिपाई पर खुला हुआ हाई स्कूल बैग पड़ा है जिसमें आधी कापियाँ और किताबें बाहर बिखरी हैं। सोफे पर दो एक पुराने मैंगजीन एक कैंची और कुछ कटी–अधकटी तस्वीरें रखी हैं। एक कुर्सी की पीठ पर उतरा हुआ पाजामा झूल रहा है।''

इस पूरे दृश्य को देखने के बाद हमें उस घर की स्थिति का पता चल जाता है कि एक मध्यवर्गीय परिवार के घर की स्थिति कैसी हो सकती है। पारिवारिक संबंधों के बिखराव एवं चरमराती आर्थिक स्थिति का संकेत भी मिल जाता है।

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

वेशभूषा 'आधे–अधूरे' के रंग–शिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग है। वेशभूषा, साज–सज्जा और पहनावे के आधार पर यह नाटक अपने समकालीन नाटकों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। जिस प्रकार माना जाता है कि नाटक का एक–एक शब्द अपने पूरे कथ्य के लिए अर्थपूर्ण होना चाहिए, उसी प्रकार वेशभूषा भी नाटक के मूल कथ्य और पात्र के चरित्र को उभारने में मददगार होनी चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जब वेशभूषा पात्र के स्वभाव, वर्ग, आयु, समाज में स्थान, उसकी व्यक्तिगत पसंद, उसकी मनोदशा और उसके चरित्र को ध्यान में रखकर परिकल्पित की गयी हो और उस चरित्र की कुछ खास विशेषताओं को उभारती हो। इस नाटक में एक ही कलाकार पाँच अलग–अलग भूमिकाएँ अदा करता है। इसलिए उसके पहनावे में अंतर स्पष्ट करते हुए नाटककार ने लिखा है–

"पुरुष एक के रूप में वेषान्तर पतलून, कमीज। ...पुरुष दो के रूप में पतलून और बंद गले का कोट। ...पुरुष तीन के रूप में पतलून टी शर्ट। ... पुरुष चार के रूप में पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट।"

यहाँ हमें दिखाई पड़ता है कि व्यवहारिक सुविधा को देखकर मोहन राकेश ने पाँचों पुरुषों को पतलून इसलिए पहनाया है जिससे कि केवल ऊपर से ही कपड़े को बदला जा सके। इसी परिपाटी पर सावित्री के वेशभूषा के संबंध में भी नाटककार ने निर्देश दिया है–

"ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण, दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।"

सावित्री के वेशभूषा के अंतर्गत दो तरह की साड़ियों के बारे में नाटककार का बताना यह संयोग मात्र नहीं है बल्कि नाटककार ने बदलते माहौल और सावित्री की मनःस्थिति के परिवर्तन को रेखांकित करने के लिए

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

दिखाया गया है। सावित्री की वेशभूषा के संदर्भ में प्रसिद्ध रंगकर्मी कीर्ति जैन का मानना है कि– 'अगर सावित्री को पहले अंक में किसी चटख रंग की कीमती साड़ी में दिखा दे तो यह उसकी शारीरिक स्थिति, मानसिक हालत, मनोदशा और पसंद सबके विपरीत जाएगा। पर दूसरे अंक में जगमोहन के साथ बाहर जाने के समय सावित्री का चटख रंग की बढ़िया साड़ी पहनना ही उपयुक्त लगेगा।'

वेशभूषा संबंधित यह सुचिंतित दृष्टि नाटक के प्रत्येक पात्र के संबंध में दिखाई देती है।

इस नाट्यकृति के मंच–सज्जा के विषय में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मोहन राकेश ने अपने से पहले के नाटककारों से अलग तरह के मंच की परिकल्पना की है। उन्होंने मंच पर भारी–भरकम सामान की बजाए जन–सामान्य के उपयोगी वस्तु को मंच पर स्थान दिया है जिससे नाटक का पूरा परिवेश मध्यवर्गीय परिवार का लगे। जैसे–मंच पर 'सोफा सेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और ड्रेसिंग टेबल' ये सभी चीजें रोजमर्रा की जीवन में इस्तेमाल की जाती है। मोहन राकेश अपने नाटकों में मंच सज्जा का पूरा ध्यान रखते हैं। उनका मानना था कि मंच पर उपस्थित प्रत्येक वस्तु का अपना एक विशेष प्रतीकात्मक महत्व होता है।

'आधे–अधूरे' नाटक की शुरुआत पर्दे और प्रकाश से होती है 'पर्दा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोड़ा गया अधटूटा टी–सेट आलोकित होता है। ...कुछ सेकेण्ड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार के कश खींच रहा है।' इस तरह के मंच–सज्जा की व्यवस्था इस नाटक में हुई है। इसी मंच–सज्जा में नाटककार ने दिखाया है–

साहित्य संहिता
Available at http://www.sahityasamhita.org/
ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

'तीन दरवाजे तीन तरफ से झाँकते हैं। एक दरवाजा कमरे को पिछले अहाते से जोड़ता है, एक अंदर के कमरे से और एक बाहर की दुनिया से।' इससे लगता है कि ये तीन कमरे सिर्फ कमरे नहीं हैं बल्कि ये तीन युग हैं– भूत, भविष्य और वर्तमान, जिससे हमारे जीवन का यथार्थ जुड़ा हुआ है।

अभिनयता की दृष्टि से 'आधे–अधूरे' हिंदी रंगमंच का कठिन और चुनौतीपूर्ण नाटक कहा जा सकता है। नाटक की रंगमंचीयता के विषय में प्रो. रमेश गौतम ने लिखा है–

''किसी भी नाटक की सफलता लेखक के मेज पर नहीं, मंच पर देखी जाती है। लेखक की मेज पर उसे अंतिम और वास्तविक अर्थ दिया ही नहीं जा सकता– अंतिम परिणति 'स्टेज' है।''

यह नाटक रंगमंचीयता की कसौटी पर खरा उतरा है। नाटक की रंगमंचीय शैली जो भारतेन्दु और प्रसाद के समय थी। उसको उत्कर्ष पर पहुँचाने का काम मोहन राकेश ने किया। 'आधे–अधूरे के सफल मंचन ने हिंदी रंगमंच की दिशा को ही नहीं बदला, बल्कि मंचीकरण के नये यथार्थवादी रंगशिल्प के मानदंडों को भी स्थापित करने का काम किया। इस नाटक का सफल मंचन हिंदी के अलावा, मराठी, कोंकणी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं में भी हो चुका है। जिस जगह पर भी इस नाटक का मंचन हुआ है वहाँ इसे एक सफल नाटक की ख्याति प्राप्त हुई है। 'आधे–अधूरे' नाटक के सफल मंचन के बारे में नेमिचंद्र जैन का कहना है–

''आधे–अधूरे' न केवल हिंदी भाषी दर्शक समुदाय में, बल्कि अनूदित होकर देश के अन्य अनेक क्षेत्रों में लोकप्रिय है।''

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

मोहन राकेश ने समकालीन यथार्थ को रंगशिल्प के जरिए प्रस्तुत करके इस नाटक को एक सफल रंगमंचीय नाटक बनाने में कामयाब हुए हैं।

अंत में कहना उचित होगा कि मोहन राकेश ने आधे–अधूरे के माध्यम से स्वातंत्रोतर भारत की बदलती हुई परिस्थिति और महानगरीय जीवन के तनाव को यथार्थवादी रंगशिल्प के माध्यम से मंच पर अभिव्यक्त ही नहीं किया बल्कि उसकी एक नयी परंपरा भी विकसित की। जिसके कारण उनको नाट्य जगत या यूँ कहें कि नाट्य–साहित्य में एक अलग पहचान मिली।

**सारांश**: अतः इसके साथ यह भी कहना जरूरी जान पड़ता है कि यदि इस नाटक की रंग–शिल्प में कहीं चूक रह भी गई होगी तो वह मोहन राकेश की दृष्टि की चूक नहीं होगी बल्कि उस काल की समय सीमा की चूक रही होगी।

# संदर्भ ग्रंथ सूची


## (क) आधार ग्रंथ –

1. राकेश, मोहन – आधे–अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1969

## (ख) सहायक ग्रंथ –

1. अग्रवाल, हरिश्चन्द्र – नाटककार मोहन राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2001
2. कुमार, सिद्धनाथ – आधे–अधूरे संवेदना और शिल्प, सरोज प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण, 1987
3. कथूरिया, सुन्दरलाल (सं) – नाटककार मोहन राकेश, कुमार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974
4. गौतम, रमेश – रंगानुभव के बहुरंग, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006

ISSN- 2454-2695
Volume 01 Issue 08
September 2015

5. गौतम, रमेश – हिन्दी रंगभाषा स्वरूप और विकास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015

6. चातक, गोविन्द – आधुनिक हिन्दी नाटक का मसीहा, मोहन राकेश, इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998

7. चातक, गोविन्द – रंगमंच कला और दृष्टि, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1988

8. चातक, गोविन्द – हिन्दी नाटक के सोपान, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2002

9. जैन, नेमिचन्द्र (सं) – आधुनिक हिन्दी नाटक : सार्थकता की दिशाएँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1986

10. तनेजा, जयदेव – मेरे साक्षात्कार : मोहन राकेश, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003

11. तनेजा, जयदेव – हिन्दी नाटक आज–कल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010

12. राकेश, मोहन – बकलम खुद, राजपाल एण्ड सन्स, भारत, प्रथम संस्करण, 1974

13. रस्तोगी, गिरिश – मोहन राकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1976

14. त्रिपाठी, शोभा – आधुनिक हिन्दी रंगमंच, देवभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011

## (ग) पत्रिका

1. जैन, कीर्ति – नटरंग, अंक – 38, 39,

रंगशिल्प विशेषांक, 1982,

रंगमंचीय वेशभूषा : कुछ प्राथमिक सवाल